CHĀNDOGYOPANIṢAD
CHAPTER SEVEN

छान्दोग्योपनिषद्
सप्तम् अध्याय

: A Reading

AASHUTOSH KUMAR THAKUR

2020

Chāndogyopaniṣad
Chapter Seven

छान्दोग्योपनिषद्
सप्तम् अध्याय

: A Reading

2020

Aashutosh Kumar Thakur

CHĀNDOGYOPANIṢAD
CHAPTER SEVEN

छान्दोग्योपनिषद्
सप्तम् अध्याय

: A Reading

Svayam Prakash Sharma

Note: Shirbindu has been used in all places हां

Break the bibhakti separate from the karak words नाम से

DEVANAGARI SCRIPT HINDI

ॐ

१. [देवऋषी] नारद सदावहार बालक रहनेवाले सनतकुमारके पास गए और उनसे बोले - पुजणीय कृपया मुझे शिक्षा दो।

२. सनतकुमारने नारदसे कहा - नारद पहले तुम मुझे बताओ कि तुमहे क्या क्या आता है। फिर मै तुमहे उससे आगेकी शिक्षा दुंगा।

३. नारदने उत्तर दिया - आदरणीय, मै चारों वेदोंको जानता हुं। ऋग्वेदको, यजुरवेदको, सामवेदको तथा अथर्ववेदको। पांचवे वेदके रुपमे मै महाकाव्य तथा प्राचिन गाथाएं जानता हुं। व्याकरण, पित्रोंको शान्त करना, कालशास्त्र, नीति, तर्कशास्त्र, राजनीति, देवोंका ज्ञान, रहस्यमई विद्याका ज्ञान, मूल तत्व विद्या, शस्त्रज्ञान, खगोलशास्त्र, नागोँका ज्ञान तथा ललितकला। मै यह सब कुछ जानता हुं लेकिन आदरणिय, मै उस जैसा हुंजो केवल शब्दोंको ही जानता है लेकिन जो स्वयमको नही जानता है, जो आत्माको नही जानता है। मैने आप जैसोँ से ही सुना है की जो आत्माको जानता है, वह शोक पार करता है, वह शोक पर विजय पा लेता है। पुजणीय मुझे शोक पर विजय पाने के लिए मेरी मदत करो, मेरी सहायता करो। दुखोंको कैसे पार किया जाता है यह जाननेमे मेरी सहयता करो।

४. ऐसे सम्बोधित होने पर सनतकुमारने नारदसे कहा - नारद, वाकै, जो कुछ तुमने सिखा है, वेह तो केवल नाम ही है। वेह सब जो कुछ तुमने बताया है ये सबके सब केवल नाम ही है। ऋग्वेद, यजुरवेद, सामवेद, अथर्ववेद, महाकाव्य तथा प्राचिन गाथाएं, राजनीति इत्यादी ये सबके सब नाम ही तो है। नाम **[Name]** पर ध्यान लगाओ। वेह जो नाम पर ध्यान लगाता है, वेह ऐसे ध्यान लगानेसे वहाँतक असीमित स्वतन्त्रता पाता है जहांतक नाम जाता है, जहांतक नामकी पहोंच है।

५. नारदने फिर पुछा - क्या नाम से बडा कुछ है ?

६. सनतकुमार बोले - हां। नामसे बडी वाणी है। वाणीसे ही हम जो कुछ पहले कहा गया है उससबको जानते हैं। ऋग्वेदको, यजुरवेदको, सामवेदको इत्यादी। वाणी से ही हम पृथ्वी तथा स्वर्गको जानते हैं , वायु और अन्तरिक्षको जानते हैं, जल तथा तेजको जानते हैं, देव तथा मानव, पशु तथा पक्षी, पेडपौधे, घास, जानवर,

किडेमकौडे, मख्खी, चिटी, सही और गलत, सत्य और असत्य, अच्छा और बुरा, अच्छा लगनेवाला थथा बुरा लगनेवाला, धर्म अधर्म इत्यादी इन सबको हम वाणीसे ही जानते हैं। यदी वाणी नही होती तो हम सत्य और असत्यकी पहचान कैसे करते ? यह तो वाणी ही है जो इन सबकी जानकारी हमे देती है, जिसके कारण ये सब हमे पता लगते हैं। इसलिए वाणी **[Speech]** पर ध्यान लगाओ। वेह जो वाणी पर ब्रह्मके रुपमे ध्यान लगाता है, वेह ऐसे ध्यान लगानेसे वहांतक असीमित स्वतन्त्रता पाता है जहां तक वाणीकी पहोंच है।

७. नारदने फिर पुछा - क्या वाणी से बडा कुछ है ?

८. सनतकुमार बोले - हां। वाणीसे बडा मन है। जैसे एक बन्द मुठ्ठीमे दो फल पकडके रखे जाते हैं, एसे ही मन भी दोनो नाम और वाणीको अपनेमे रखता है। मनसे ही व्यक्ती पवित्र मंत्र सिखनेकी इच्छा करता है और तब वेह उन्हे सिख लेता है। यदी उसका मन पवित्र कर्मको सोचता है तो वेह पवित्र कर्म करता है। जब वेह अपनी मनमे पुत्र वा पशुधनकी इच्छा करता है, तब ही वेह इन्हे पानेका संकल्प करता है। जब वो अपने मनसे इस लोक और स्वर्ग लोकको पानेकी इच्छा करता है, तब ही उसके मनमे इनहे पानेकी कामना होती है। मन वास्तवमे आत्मा है, मन वास्तवमे लोक है और मन वास्तवमे ब्रह्म है। इसलिए मन **[Mind]** पर ध्यान लगाओ। वेह जो मन पर ब्रह्मके रुपमे ध्यान लगाता है, वेह ऐसा ध्यान लगाने से वहां तक असीमित स्वतन्त्रता पाता है जहां तक मनकी पहोंच है।

९. नारदने फिर पुछा - क्या मन से बडा कुछ है ?

१०. सनतकुमार बोले - हां। मनसे बडा संकल्प शक्ति है। क्योंकी जब व्यक्ती संकल्प करता है तब ही व्यक्ती सोचविचार करता है। तब ही व्यक्ती वाणि से बोलता है। और तब ही वायकती नाम लेता है। और नाममे पवित्र भजन, मंत्र वा श्लोक तथा पवित्र कर्म, ये सब सामिल है। ये सबके सब संकल्पमे केन्द्रित हैं। ये उसीके रुप हैं। इन सबकी आत्मा संकल्प है और ये सब संकल्पमे निवास करते हैं। इन सबका आश्रय संकल्प है। स्वर्ग तथा पृथ्वी संकल्पसे बने हैं। वायु तथा आकाश, जल तथा तेज ये सब संकल्प से बने हैं। इन सबके संकल्प किये जानेसे वायुका संकल्प हुवा, वायुके संकल्प किये जाने पर ही जल और तेज पैदा हुवें, इनही से ही अन्नका संकल्प हुवा, अन्नके संकल्प किये जानेसे जिवोंका संकल्प हुवा और जिवोंके संकल्प किये जानेसे पवित्र भजन, मंत्र वा श्लोकका संकल्प हुवा और इस सबके संकल्प हो जाने से पवित्र कर्मोंका संकल्प हुवा। और पवित्र कर्मोंका संकल्प किये जानेसे इस लोकका संकल्प हुवा। और लोकके संकल्प किये जाने से, हसके माध्यमसे सबकुछका संकल्प हुवा। इसलिए संकल्प शक्ति **[Will]** पर ध्यान लगाओ। वेह जो संकल्प शक्ति पर ब्रह्मके रुपमे ध्यान लगाता है, वेह एसे ध्यान लगानेसे उन लोकोंको प्राप्त करता है जिसका उसने संकल्प किया था। वेह लोक दुखरहित है। यदी वो स्वयम स्थायी वा नित्य है, तब जो लोक उसे प्राप्त होते हैं, वेह लोक भी स्थायी और नित्य होते हैं। यदी वेह स्वयम स्थिर है तो उसके लोक भी स्थिर होते हैं।

वेह जो संकल्प शक्ति पर ब्रह्मके रुपमे ध्यान लगाता है, वेह एसे ध्यान लगाने से वहां तक असीमित स्वतन्त्रता पाता है जहां तक संकल्प शक्तिकी पहोंच है।

११. नारदने फिर पुछा - क्या संकल्प शक्ति से बडा कुछ है ?

१२. सनतकुमार बोले - संकल्प शक्तिसे बडा मनन् वा सोचविचार [चित्त] है। जब कोइ व्यक्ती चेतनयुक्त होता है तब ही वह संकल्प करता है। तब ही वह सोचता है और तब ही वह वाणी बोलता है और नाम लेता है। पवित्र भजनमे नाम सामिल है और पवित्र कर्म पवित्रभजनमे सामिल है। ये सबके सब मन वा सोचविचारमे केन्द्रित हैं।इन सबका लक्ष मनन् है और ये मनन् मे निवास करते हैं। इसलिए यदि व्यक्तिके पास बहोत सारार विद्या भि हो लेकिन मनन् वा सोचविचार नही करता तब लोग उसके बारेमे कहते हैं की वेह कुछ भी नही है जबकी उसके पास बहोत सारी विद्या है। वास्तवमे यदी उसके पास असलमे विद्या व ज्ञान होता तो वह मनन् सोचविचार नकरनेवाला हर्गिज ना होता। इसके विपरीत यदी वह मनन् वा सोचविचार करने वाला है तो यदी उसके पास केवल थोडा सा ही ज्ञान और थडी सी ही विद्या है, फिर भी लोग उसे सुनने की इच्छा करते हैं। वास्तवमे मनन् इन सबका सहारा व आश्रय है। इसलिए मनन् व सोचविचार **[Thought]** पर ध्यान लगाओ। वेह जो मनन् पर ब्रह्मके रुपमे ध्यान लगाता है, वेह उन लोकोंको पाता है जिनके बारेमे उसने मनन् किया था, जिनके बारेमे उसने सोचा था। यदी वह स्वयम स्थायी है तो उसे स्थायी लोक प्राप्त होते हैं। यदी वह स्वयम स्थापित है तो उसे स्थापित लोक प्राप्त होते हैं। यदी वह स्वयम् चंचल नही है और दृढ है तो उसे दृढ लोक ही प्राप्त होते हैं। वेह जो मनन् और सोचविचार पर ध्यान लगाता है, वेह एसे ध्यान लगाने से वहां तक असीमित स्वतन्त्रता पाता है जहां तक मनन् व सोचविचारकी पहोंच है।

१३. नारदने फिर पुछा - क्या मनन् और सोचविचार से बडा कुछ है ?

१४.सनतकुमार बोले - हां। मनन् और सोचविचारसे बडा है चिन्तन। कयोंकी चिन्तन से हम अपने सारी सोचको एक बिन्दु पर एकत्रित और केन्द्रित करते हैं। एसलिए ये मनन् से बडा है। वातावरण जैसे चिन्तन करता है, स्वर्ग जैसे चिन्तन करता है, एसे ही जल, पहाड, देव और मानव ये सभी जैसे चिन्तन करते हैं, इसलिए मनुष्यमे जो भी यहां चिन्तन करता है, वो महानता प्राप्त करता है। उसे चिन्तनसे प्राप्त होनेवाले फलका एक हिस्सा प्राप्त कर लिया है। छोटी बुद्धीवाले तथा छोटे लोग हमेसा आपसमे लडते झगडते हैं।वे गालीगलोज और झुठी निन्दा करते हैं जबकी अच्छे, बेहतर श्रेष्ठतर और बडे दिलवाले लोग एसा नही करते क्योंकी उनहे चिन्तनके फलका एक हिस्सा मिल गया होता है। इसलिए चिन्तन **[Meditation]** पर ध्यान लगाओ। वेह जो चिन्तन पर ब्रह्मके रुपमे ध्यान लगाता है, वेह वैसे ध्यान लगाने से जहां तक चिन्तनकी पहोंच है, वेह वहां तक असीमित स्वतन्त्रता पाता है।

१५. नारदने फिर पुछा - क्या चिन्तन से बडा कुछ है ?

१६. सनतकुमार बोले - हां। चिन्तनसे श्रेष्ठ समझ है। समझसे ही व्यक्ती इन सबको – ऋगवेदको, यजुरवेदको, सामवेदको, अथर्ववेदको, गाथाएं तथा प्राचिन विद्या पांचवे वेदके रुपमे इन सबको समझता है। समझ से ही वेह व्याकरण, पूर्वजों के संस्कार, गणित, संकेतोको पढ्नेका ज्ञान, समयका विज्ञान, तर्क, नीतिशास्त्र, राजनीति, देवोंका विज्ञान, पवित्र वेदोंकी विद्याका ज्ञान, मूल तत्वोंका विज्ञान, राज करनेका विज्ञान, खगोलशास्त्र, सर्पोको वशमे करनेका विज्ञान, ललितकला, स्वर्ग तथा पृथ्वी, वायु तथा आकाश, जल तथा तप, देव तथा मानव, पशुपक्षी, घास व वृक्ष, जानवर, किडे, मख्खी, चिटी, सही और गलत, सत्य और असत्य, अच्छा तथा बुरा, मनभावन और हसका विपरित, भोजन, पेय तथा स्वाद, यह लोक तथा स्वर्ग लोक, ये सबके सब व्यक्ति केवल समझसे ही जान और समझ सकता है। केवल समझसे ही वेह इनहे जान सकता है। इसलिए समझ **[Understanding]** पर ध्यान लगाओ। जो समझ पर ब्रह्मके रुपमे ध्यान लगाता है, वेह समझका लोक और ज्ञानका लोक पाता है। जो समझ पर ब्रह्मके रुपमे ध्यान लगाता है, वेह एसे ध्यान लगाने से जहां तक समझकी पहोंच है, वेह वहां तक असीमित स्वतन्त्रता पाता है।

१७. नारदने फिर पुछा - क्या समझ से बडा कुछ है ?

१८. सनतकुमार बोले - हां। समझ से श्रेष्ठ बल है। एक बलवान व्यक्ति के सामने सौ समझवाले व्यक्ति भी कांपते हैं। जब व्यक्ति बलवान या ताकतवर बन जाता है, तो वेह बढने वाला व्यक्ति बन जाता है। और जब वेह बढता है तब वेह ज्ञानी और विद्वान लोगों की सेवा करता है। और जब वेह उनकी सेवा करता है तो वेह उनकी समिप आजाता है और उनके साथ शिष्यके रुपमे जुड जाता है। और एसे समिप आनेसे वेह दृष्टा बन जाता है। वेह सुननेवाला बन जाता है, वेह सोचने वाला बन जाता है, वेह देखने और समझने वाला बन जाता है, वेह करने वाला बन जाता है और समझने वाला बन जाता है। बल या ताकत से ही सब खडे हैं – पृथ्वी, वातावरण, स्वर्गलोक, पहाड, देवगण, मनुष्य, पशुपक्षी, घास और वृक्ष, किडे, मख्खी, चिटी, ये सबके सब बलके कारण ही खडे हैं। ये सब के सब बल के बुते पर ही खडे हैं। बलसे ही ये सारा जगत खडा है। इसलिए बल **[Strength]** पर ध्यान लगाओ। वेह जो बल पर ब्रह्मके रुपमे ध्यान लगाता है, वेह एसे ध्यान लगाने से जहां तक बल की पहोंच है वेह वहां तक असीमित स्वतन्त्रता पाता है।

१९. नारदने फिर पुछा - क्या बल से भी बडा कुछ है ?

२०. सनतकुमार बोले - बल से बडा और श्रेष्ठ अन्न है। इसलिए यदि कोइ व्यक्ति दश दिन तक अन्न नही खाता तो वो जिवित तो रहेगा लेकिन वो बहोत गुर्वल और बहोत कमजोर हो जाएगा और वो अदृष्टा हो जाएगा। वेह नसुननेवाला होजाएगा, वेह नासोच्नेवाला होजाएगा, वेह नासमझनेवाला होजाएगा, वेह नाकरनेवाला तथा नाजान्नेवाला होजाएगा। लेकिन जैसे ही वेह अन्न खालेता है, जैसे ही वेह भोजन खालेता है, जैसे ही अन्न या भोजन उसके अन्दर प्रवेश कर जाता है, वेह फिर से सुननेवाला बन जाता है, वेह फिर से सोचविचार

करनेवाला बन जाता है, वेह फिर से समझनेवाला बन जाता है, वेह फिर से करने वाला बन जाता है और वो फिर से जानने वाला बन जाता है ।इसलिए अन्न **[Food]** पर ध्यान लगाओ । वेह जो अन्न पर ब्रह्मके रुपमे ध्यान लगाता है, वेह अन्न और पेय के लोक प्राप्त करता है । जो अन्न पर ध्यान लगाता है, वेह एसे ध्यान लगाने से जहां तक अन्न की पहोंच है, वेह वहां तक असीमित स्वतन्त्रता पाता है ।

२१. नारदने फिर पुछा - क्या अन्न से बडा कुछ है ?

२२. सनतकुमार बोले - अन्नसे बडा और श्रेष्ठ जल है । इसलिए जब अपर्याप्त या कम वर्षा होती है, तो जी सोचततव इस विचारसे परेशान हो जाते हैं कि अन्न कम हो जाएगा, अन्न दुर्लभ हो जाएगा । लेकिन जब पर्याप्त और काफी वारिश होती है तब जीव यह सोच कर खुसिया मनाते हैं की अन्नकी बहोत आयात होगी, कि अन्नकी कमी नही होगी । यह केवल जल ही है जो अलग अलग रुप लेता है जैसे पृथ्वीका, जैसे इस वातावरणका, जैसे आकाशका, पहाडोंका, देवों और मनुष्योंका, पशु और पक्षीयोंका, अस और वृक्षोंका, जानवरोंका, किडोंका, मख्खी तथा चिटीयोंका । वास्तवमे जल ही सबका आश्रय रुप है । जल ही ये सारे रुप हैं । इसलिए जल **[Water]** पर ध्यान लगाओ । वेह जो जल पर ब्रह्मके रुपमे ध्यान लगाता है, वेह अपनी सभी इच्छाएं प्राप्त करता है और वेह सन्तुष्ट होजाता है । जो जल पर ब्रह्म के रुपमे ध्यान लगाता है, वेह एसे ध्यान लगाने से जहां तक जल की पहोंच है, वेह वहां तक असीमित स्वतन्त्रता पाता है ।

२३. नारदने पुछा - क्या जल से भी श्रेष्ठ कुछ है ?

२४. सनतकुमार बोले - हां । तेज जल से भी बडा वा श्रेष्ठ है । क्योंकी तेज जब वायुको पकडकर आकाशको गरम कर देता है तब लोग केहते हैं की गरमी है, तपती गरमी है, वर्षा होगी । तेज ऐसा संकेत देता है और जल पैदा करता है । तब वेह आकाशीय बिजलीके रुपमे कडकता है और गर्जन करता है । तब लोग केहते हैं बिजली कडक रही है, गर्जन हो रहा है, इसलिए वर्षा होगी । तेज पहले संकेत देता है और फिर जल पैदा करता है । इसलिए तेज **[Heat]** पर ध्यान लगाओ । वेह जो तेज पर ब्रह्म के रुपमे ध्यान लगाता है, वेह स्वयम भी तेजवान् बन जाता है वेह तेजमान् व प्रकाशमान् लोक जितता है जो अन्धकार से मुक्त है । जो तेज पर ब्रह्मके रुपमे ध्यान लगाता है, वेहएसे ध्यान लगाने से जहां तक तेजकी पहोंच है वेह वहां तक असीमित स्वतन्त्रता पाता है ।

२५. नारदने फिर पुछा - क्या तेज से बडा कुछ है ?

२६. सनतकुमार बोले - हां । तेज से बडा व श्रेष्ठ अकाश है । क्योंकी अकाशमे ही सूर्य और चन्द्रमा दोनो आकाशीय बिजली, तारे तथा अग्नि यह सब भी अस्तित्व रखते हैं ।आकाशके माध्यमसे ही कोइ पुकारता है । आकाशके माध्यमसे ही कोइ सुनता है और इसीकी माध्यमसे कोइ उत्तर देता है ।आकाशमे व्यक्ति अनन्द भी लेता है और नही भी लेता । आकाशमे और आकाशके अन्दर ही व्यक्ती जन्म लेता है तथा अकाशकी

और ही वेह बढता है। इसलिए आकाश **[Space]** पर ध्यान लगाओ। वेह जो अकाश पर ब्रह्म के रुपमे ध्यान लगाता है, वेह आकाशके लोक प्राप्त करता है। वेह प्रकाशके लोक प्राप्त करता है जो सीमित नही है और दुरदुर तक फैले हुवे हैं। जो आकाश पर ब्रह्म के रुपमे ध्यान लगाता है वेह ऐसे ध्यान लगाने से जहां तक आकाशकी पहओंच है, वेह वहां तक असीमित स्वतन्त्रता प्राप्त करता है।

२७. नारदने फिर पुछा - क्या आकाश से भी बडा कुछ है ?

२८. सनतकुमार बोले - हां। आकाश से बडी स्मृती या याददास्त है। इसलिए जब कइ लोग इकठ्ठे होते हैं और यदी उनहे स्मृति या याददास्त नही है तब वेह किसीको सुन नही सकते। तब वेह सोच नही सकते। तब वेह समझ नही सकते। लेकिन यदी उनहे स्मरण होगा, यदी उनहे याद होगा तब वेह सुन सकेंगे, तब वेह सोच सकेंगे, तब वेह समझ सकेंगे। स्मृतिसे ही व्यक्ति अपनोंको तथा अपने पशुधन इत्यादीको जान सकता है। इसलिए स्मृति **[Memory]** पर ध्यान लगाओ। वेह जो स्मृति पर ब्रह्म के रुपमे ध्यान लगाता है, वेह ऐसे ध्यान लगाने से वहां तक असीमित स्वतन्त्रता पता है जहां तक स्मृति की पहोंच है। उसे वेह सब प्राप्त होता है जहां तक स्मृतिकी पहोंच है।

२९. नारद सनतकुमारसे बोले - भगवन्, क्या स्मृति से भी श्रेष्ठ कुछ है ?

३०. सनतकुमार बोले - हां। स्मृति से भी श्रेष्ठ है आशा। जब आशा जागृत होती है तब स्मृति, पवित्र मंत्र, भजन व श्लोक सिखती है, तबही लोग यज्ञ करते हैं। तबही वे सन्तान, पशुधन वा धन दौलत की इच्छा करते हैं और इस लोक तथा परलोककी इच्छा करते हैं। इसलिए आशा **[Hope]** पर ध्यान लगाओ। वे जो आशा पर ब्रह्म के रुपमे ध्यान लगाता है, आशा द्वारा उसकी सबही इच्छाएं पूर्ण हो जाती हैं और उसकी सबही प्रार्थनाओंका उसे उत्तर मिल जाता है। उसकी प्रार्थना व्यर्थ नही जाती। जो आशा पर ब्रह्मके रुपमे ध्यान लगाता है जहां तक आशाकी पहोंच है वहां तक उसे असीमित आजादी मिलती है।

३१. नारद ने पुछा - क्या आशा से बडा कुछ है ?

३२. सनतकुमार बोले - हाँ। आशासे बडा एवम् श्रेष्ठ जीवनश्वास **[Breath]** है। जैसे पहियेकी अरे, उसकी नाभी अर्थात उसके केन्द्रमे केन्द्रित और स्थित होती हैं, उसी प्रकार यह सब कुछ जो भी अस्तित्वमे है, ये सबभी जीवनश्वासमे केन्द्रित और स्थित है। उसमे अच्छी तरह टिका हुवा है। यह जो जीवन है यह तो जीवनरुपी प्राण वा जीवन श्वास से ही चलता है। जीवन श्वास जीवन देता है। वेह सब जीवों को
जीवन देता है। जीवन श्वास व्यक्ति का पिता है, व्यक्तिकी माता है, वेह व्यक्तिका भाइ है, वेह व्यक्तिकी बहन है, वेह व्यक्तिका आचार्य है और वेह ही ब्रह्मको जानने वाला ब्राहमण है। यदि कोइ व्यक्ति अपने पितासे, अपने मातासे, अपने भाइसे, अपने बहनसे, अपने आचार्यसे या ब्रह्मको जाननेवाले से अशिष्टता से बोलता है, तो लोग उससे कहते हैं – तुमहे शर्म आनी चाहिए क्योंकी एसा करने से जैसे तुम अपने पिताके, अपने

माताके, अपने भाइके, अपने बेहनके, अपने आचार्यके और ब्रह्मज्ञानको जानने वालेके अर्थात इन सबके तुम हत्यारेके समान हो लेकिन जब इन सबमे से जीवन प्राण चले जाते हैं तब यदी तुम उन्हे डन्डेसे या लोहेकी छडसे वेह धकेलता है और उन्हे पुरी तरह जला भी देता है तब लोग यह नही कहेंगे की वेह अपने माता, पिता, भाइ, बेहन, आचार्य या ब्रह्मज्ञानीका हत्यारा है। जीवन प्राण ही ये सब कुछ है। जो कुछ अस्तित्वमे है, वेह जीवन प्राण ही है। वेह जो यह देखता है, जो यह सोचता है, जो यह समझता है, वेह एक श्रेष्ठ वक्ता बन जाता है। और लोग यदी उसे यह कहे की तुम एक श्रेष्ठ वक्ता हो तो उसे सनसे सहमत होना चाहिए कि हां मै एक श्रेष्ठ वक्ता हुं ना की वेह इस बात से इनकार करे। ऐसा व्यक्ति उन सबसे परे पहोंच जाता है जो पहले कहा गया था – नाम से सुरु हो कर आशा तक। उसे यह एहसास हो जाता है, वेह यह जान जाता है की जीवन श्वास या प्राण या चेतन आत्मा ही ब्रह्म है। वेह जो श्रेष्ठता से बोलता है, वेह श्रेष्ठता से सत्यके बारेमे भी बोलता है। मै श्रेष्ठता से सभीके बारेमे भी बोलुंगा। लेकिन सत्यके बारेमे श्रेष्ठता बोलने के लिए सत्यको समझनेकी इच्छा होनी चाहिए।

३३. नारदने सनतकुमारसे कहा - मै सत्यको समझने की इच्छा रखता हुं भगवन्।

३४. सनतकुमार बोले - वास्तवमे जो व्यक्ति सत्यको अच्छी तरह से समझता है, तबही वेह सत्य बोलता है। वेह जो ईसा नही समझता, वेह सत्य नही बोल सकता। वेह तो सत्य बोल ही नही सकता। केवल वही जो सत्यको अच्छी तरह समझता है, केवल वही सत्य बोलता है। इसलिए सत्य को समझने की इच्छा होनी चाहिए।

३५. नारदने कहा - भगवन, मै सत्य को समझना चाहता हुं।

३६. सनतकुमार बोले - जब व्यक्ति सोचता है, जब वो मनन् करता है, तबही वेह अच्छी तरह समझता है। जो सोचता नही, वेह समझता ही नही। केवल सोचनेवाला समझता है। इसलिए व्यक्तिको सोचनेको समझने की इच्छा होनी चाहिए।

३७. नारदने कहा - भगवन् मै सोचने को समझना चाहता हुं।

३८. सनतकुमार बोले – जब व्यक्तिमे श्रद्धा होती है तबही वेह सोचता है। जिसमे श्रद्धा नही है, वेह सोचता भी नही है। केवल श्रद्धावाला व्यक्ति ही सोचता है। इसलिए व्यक्तिमे श्रद्धा तथा समझने की इच्छा होनी चाहिए।

३९. नारदने कहा – मै श्रद्धा को समझना चाहता हुं भगवन्।

४०. सनतकुमार बोले – जब व्यक्ति मे निष्ठा वा दृढता होती है या जब व्यक्ति दृढ होता है तबही उसमे श्रद्धा होती है। जो दृढ नही है, जो चंचल है, जो स्थिर नही है, हसमे श्रद्धा हो ही नही सकती। केवल दृढ व्यक्तिमे श्रद्धा हो सकती है। इसलिए दृढता को समझने की इच्छा होनी चहिए।

४१. नारदने कहा – मै दृढता को समझना चाहता हुं भगवन्।

४२.सनतकुमार बोले – जब व्यक्ति क्रियाशिल होता है या जब वेह सक्रिय होता है तबही व्यक्ति मे दृढता आती है। बिना क्रियाशील हुवे व्यक्ति दृढ नही हो सकता। केवल क्रियाशिलता से ही दृढता आती है। इसलिए क्रियाशिलता या सक्रियता को समझने की इच्छा होनी चाहिए।

४३. नारद ने कहा – भगवन् मै सक्रियता को समझना चाहता हुं।

४४. सनतकुमार बोले – जब व्यक्ति को सुख या खुसी मिलती है या जब व्यक्ति खुस होता है तबही वेह सक्रिय या क्रियाशील होता है। जो खुस नही है वेह क्रियाशिल नही हो सकता। केवल चही क्रियाशिल हो सकता है जो खुस है। इसलिए व्यक्ति मे खुसीको समझने कीइच्छा होनी चाहिए।

४५. नारदने कहा – मै खुसी को समझना चाहता हुं भगवन्।

४६. सनतकुमार बोले – जो अनन्त है, वही सुख या खुसी है। किसी भी सीमित या छोटे मे कोइ खुसी नही है। केवल अनन्त और असीम मे ही खुसी है। इसलिए अनन्त वा असीमको समझने की इच्छा होनी चाहिए।

४७. नारद ने कहा – मै अनन्त असीमको समझना चाहता हुं भगवन्।

४८. अनन्त वेह है जहां उस अनन्त के इलावा कुछ और दिखता नही है। जहां उस अनन्त के इलावा कुछ और सुनाइ देता नही है। जहां उस अनन्त के इलावा कुछ और समझा नही जाता। और जहां अनन्तके इलावा कुछ और देखा जा सकता है, कुछ और सुना जा सकता है तथा कुछ और समझा जा सकता है तो यह जानलो की वेह अनन्त नही है। वेह अल्प है, वेह छोटा है, वेह सीमित है। अनन्त तो वेह अमर, अजर ब्रह्म है जबकी सीमित और छोटा तो नाशवान् और मरणधर्मा है, जिसका अन्त होता है।

४९. नारद ने कहा – भगवन् ये अमर किस पर आधारित है ? ये किस पर प्रतिष्ठित है ? ये किस पर टिका हुवा है ?

५०. सनतकुमार बोले – नारद, जानलो की यह अनन्त तो अपनी ही महानता पर टिका हुवा है। या फिर ये अपनी महानता पर भी नही टिका हुवा। पृथ्वी पर इस जगतमे लोग, गाई, घोडे, हाती, सोनाचांदी, दास दसीयां, पत्नीयां, जमिनजाइदाद, घर इत्यादी इन सबका होना इस सबके होनेको लोग महानता मानते हैं।मैयह नही मानता। क्योंकी इसमे प्रत्येक चीज एक दुसरे पर निर्भर है। प्रत्येक चीज दुसरे पर आधारित है। दुसरे पर टिकी हुई है। अनन्त तो अपने सिवाय किसी और पर आधारित हो ही नही सकता। वेह अपने से अलग पराधारित हो ही नही सकता। वेह अपने पर ही आधारित है। वेह अपने पर ही आधारित है। वेह अपने पर ही प्रतिष्ठित है। वेह अपने पर ही टिका हुवा है। वेह अनन्त निचे है, वेह उपर है। वेह अनन्त पिछे है, वेह आगे है। वेह दक्षिण की ओर है, वेह उत्तर की ओर है। वेह यह सारा जगत है।

५१. आत्मभावनाकी शिक्षा:

मै निचे हुं, मै उपर हुं। मै पिछे हुं, मै आगे हुं। मै दक्षिणकी ओर हुं, मै उत्तर की ओर हुं। वास्तवमे मै यह सारा जगत हुं।

५२. आत्माके विषयमे शिक्षा:

आत्मा निचे है, आत्मा उपर है। आत्मा पिछे है, आत्मा आगे है। आत्मा दक्षिणके ओर है, वेह उत्तरकी ओर है। वास्तवमे वह यह सारा जगत है। वेह जो इसे ऐसे देखता है, वेह जो इसे ऐसे सोचता है, वेह जो इसे ऐसे समझता है, उसे अत्मा मे खुसी मिलती है।उसे आत्मा मे आनन्द मिलता है। उसे आत्मा मे मिलन मिलता है। वेह आत्मा के साथ एक हो जाता है। उसे आत्मा मे हर्ष मिलता है। वेह आजाद है। वेह आत्मशासक है। वेह स्वयम का शासक है। हसे सभी लोकोंमे असीमित आजादी मिलती है। लेकिन वेह जो इससे अलग सोचते हैं, वेह दुसरों पर निर्भर होते हैं। उनके लिए दुसरे लोग उनके शासक होते हैं।उनहे नाशवाण यानी नष्ट होनेवाले लोग मिलते हैं।वेह नाशवाण लोकों मे रहते हैं।उनहे किसी भी लोकमे कोइ आजादी नही मिलती। वेह इधर उधर बिलकुल आजा नही सकते क्योंकी उनहे कोइ आजादी नही है। लेकिन इस प्रकार जानने वाले, स्वाशासित, स्वनिर्भर स्वयम अपने उपर शासन करते हैं।ये ना जानने वाले दुसरों के शासनमे रहते हैं।वेह जो इसे ऐसे देखता है, जो इसे ऐसे सोचता है, जो इसे ऐसे समझता है उसके लिए जीवनश्वास आत्मासे प्रकट होता है। उसके लिए आशा आत्मा से प्रकट होती है।आकाश या व्योम आत्मासे प्रकट होता है। जल आत्मासे प्रकट होता है। दिखना और लुप्त होना आत्मासे परकट होते हैं। अन्न आत्मासे प्रकट होता है। बल आत्मासे प्रकट होती है। समझ आत्मासे प्रकट होती है। समाधी तथा ध्यान लगाना आत्मा से प्रकट होती है। और ऐसे ही आत्मा से विचार प्रक्रिया, निर्धारण शक्ति, मन, वाणी, नाम, पवित्र भजन वा गान, पवित्र कर्म ये सब के सब आत्मा से प्रकट होते हैं। वास्तवमे ये सारा जगत इसी आत्मासे प्रकट हुवा है।

५३. [इस पर यह श्लोक भी है]

वेह जो इसे ऐसे देख लेता है, वो कभी मृत्यु नही देखता। वेह कभी रोग नही देखता। और ना ही वेह कभी कोइ दुख देखता है। वेह जो इसे एसे देख लेता है, वेह सब कुछ देख लेता है। और सब जगह वेह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। वेह एक हो जाता है। वही त्रिगुणा बन जाता है। वही पांचगुणा बन जाता है। वही सातगुणा बन जाता है। और वही एघाह्रगुणा, एक सऔ एघाह्र गुणा और बीस हजार गुणा कहलाता है।

५४. जब पोषण या भोजन शुद्ध हो, तब प्रकृति वा अन्तहकरण शुद्धा है। जब प्रकृति वा अन्तहकरण शुद्ध है, तब स्मृति दृढ हो जाती है। जब स्मृति दृढ रहती है, तब हृदयके सबही गांठो से मुक्ति मिलती है। ऐसे व्यक्ति के लिए जिसके सबही दाग धब्बे पोछ दिए गए हो, ऐसेको सनतकुमार अन्धकार के परे दुसरे छोर को दिखाते हैं। लोग ऐसे व्यक्ति को स्कन्द केहते हैं। हां, लोग ऐसे व्यक्ति को स्कन्द केहते हैं।

Chandogya Upanishad (English Translation)

by Swami Lokeswarananda | 165,421 words | ISBN-10: 8185843910 | ISBN-13: 9788185843919

https://www.wisdomlib.org/hinduism/book/chandogya-upanishad-english/d/doc239411.html

SANSKRIT SCRIPT

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तं होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति स होवाच ॥ ७.१.१ ॥

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ॥ ७.१.२ ॥

सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मविच्छ्रुतं ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति तं होवाच यद्वै किंचैतदध्यगीष्ठा नामैवैतत् ॥ ७.१.३ ॥

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्या नामैवैतन्नामोपास्स्वेति ॥ ७.१.४ ॥

स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.१.५ ॥

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यंराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवांश्च मनुष्यांश्च पशूंश्च वयांसि च तृणवनस्पतीञ्श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं च यद्वै वाङ्नाभविष्यन्न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्स्वेति ॥ ७.२.१ ॥

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो वाचो भूय इति वाचो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.२.२ ॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वामलके द्वे वा कोले द्वौ वाक्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचं च नाम च मनोऽनुभवति स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयीयेत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीयेत्यथ कुरुते पुत्रांश्च पशूंश्चेच्छेयेत्यथेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छेयेत्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपास्स्वेति ॥ ७.३.१ ॥

स यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो मनो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो मनसो भूय इति मनसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.३.२ ॥

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

संकल्पो वाव मनसो भूयान्यदा वै संकल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥ ७.४.१ ॥

तानि ह वा एतानि संकल्पैकायनानि संकल्पात्मकानि संकल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्चाकाशं च समकल्पन्तापश्च तेजश्च तेषां सं क्लृप्त्यै वर्षं संकल्पते वर्षस्य संक्लृप्त्या अन्नं संकल्पतेऽन्नस्य सं क्लृप्त्यै प्राणाः संकल्पन्ते प्राणानां सं क्लृप्त्यै मन्त्राः संकल्पन्ते मन्त्राणां सं क्लृप्त्यै कर्माणि संकल्पन्ते कर्मणां संक्लृप्त्यै लोकः संकल्पते लोकस्य सं क्लृप्त्यै सर्वं संकल्पते स एष संकल्पः संकल्पमुपास्स्वेति ॥ ७.४.२ ॥

स यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते संक्लृप्तान्वै स लोकान्ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति यावत्संकल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः संकल्पाद्भूय इति संकल्पाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.४.३ ॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

चित्तं वाव सं कल्पाद्भूयो यदा वै चेतयतेऽथ संकल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥ ७.५.१ ॥

तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तो भवति नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यदयं वेद यद्वा अयं विद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान्भवति तस्मा एवोत शुश्रूषन्ते चित्तंह्येवैषामेकायनं चित्तमात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्स्वेति ॥ ७.५.२ ॥

स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान्वै स लोकान्ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान्प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्भूय इति चित्ताद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.५.३

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीवापो ध्यायन्तीव पर्वता देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादांशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानापादांशा इवैव ते भवन्ति ध्यानमुपास्स्वेति ॥ ७.६.१ ॥

स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद्भूय इति ध्यानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.६.२ ॥

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयः विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यंराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यांसर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवांश्च मनुष्यांश्च पशूंश्च वयांसि च तृणवनस्पतीञ्छ्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं चान्नं च रसं चेमं च लोकममुं च विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानमुपास्स्वेति ॥ ७.७.१ ॥

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै स लोकाञ्ज्ञानवतोऽभिसिध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद्भूय इति विज्ञानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.७.२ ॥

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

बलं वाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्ठन्परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता भवत्युपसीदन्द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवति बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयांसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं बलेन लोकस्तिष्ठति बलमुपास्स्वेति ॥ ७.८.१ ॥

स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो बलाद्भूय इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.८.२ ॥

॥ इति अष्टमः खण्डः ॥

अन्नं वाव बलाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि दश रात्रीर्नाश्नीयाद्यद्यु ह जीवेदथवाद्रष्टाश्रोतामन्ताबोद्धाकर्ताविज्ञाता भवत्यथान्नस्यायै द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवत्यन्नमुपास्स्वेति ॥ ७.९.१ ॥

स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वै स लोकान्पानवतोऽभिसिध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽन्नाद्भूय इत्यन्नाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.९.२ ॥

॥ इति नवमः खण्डः ॥

आपो वावान्नाद्भूयस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राणा अन्नं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा भवन्त्यन्नं बहु भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्ता येयं पृथिवी यदन्तरिक्षं यद्द्यौर्यत्पर्वता यद्देवमनुष्यायत्पशवश्च वयांसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकमाप एवेमा मूर्ता अप उपास्स्वेति ॥ ७.१०.१ ॥

स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वान्कामांस्तृप्तिमान्भवति यावदपां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽपो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽद्भ्यो भूय इत्यद्भ्यो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.१०.२ ॥

॥ इति दशमः खण्डः ॥

तेजो वावाद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमागृह्याकाशमभितपति तदाहुर्निशोचति नितपति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाथापः सृजते तदेतदूर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिराह्रादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाथापः सृजते तेज उपास्स्वेति ॥ ७.११.१ ॥

स यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान्भास्वतोऽपहततमस्कानभिसिध्यति यावत्तेजसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.११.२ ॥

॥ इति एकादशः खण्डः ॥

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाह्वयत्याकाशेन शृणोत्याकाशेन प्रतिशृणोत्याकाशे रमत आकाशे न रमत आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्स्वेति ॥ ७.१२.१ ॥

स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्त आकाशवतो वै स लोकान्प्रकाशवतोऽसंबाधानुरुगायवतोऽभिसिध्यति यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आकाशाद्भूय इति आकाशाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.१२.२ ॥

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

स्मरो वावाकाशाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीरन्न स्मरन्तो नैव ते कंचन शृणुयुर्न मन्वीरन्न विजानीरन्यदा वाव ते स्मरेयुरथ शृणुयुरथ मन्वीरन्नथ विजानीरन्स्मरेण वै पुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून्स्मरमुपास्स्वेति ॥ ७.१३.१ ॥

स यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः स्मराद्भूय इति स्मराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.१३.२ ॥

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

आशा वाव स्मराद्भूयस्याशेद्धो वै स्मरो मन्त्रानधीते कर्माणि कुरुते पुत्रांश्च पशूंश्चेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छत आशामुपास्स्वेति ॥ ७.१४.१ ॥

स य आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशयास्य सर्वे कामाः समृध्यन्त्यमोघा हास्याशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आशां ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आशाया भूय इत्याशाया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.१४.२ ॥

॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

प्राणो वा आशाया भूयान्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन्प्राणे सर्वंसमर्पितं प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः ॥ ७.१५.१ ॥

स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वाचार्यं वा ब्राह्मणं वा किंचिद्भृशमिव प्रत्याह धिक्त्वास्त्वित्यैवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्याचार्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसीति ॥ ७.१५.२ ॥

अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन समासं व्यतिषंदहेन्नैवैनं ब्रूयुः पितृहासीति न मातृहासीति न भ्रातृहासीति न स्वसृहासीति नाचार्यहासीति न ब्राह्मणहासीति ॥ ७.१५.३ ॥

प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नतिवादी भवति तं चेद्ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत ॥ ७.१५.४ ॥

॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

एष तु वा अतिवदति यः सत्येनातिवदति सोऽहं भगवः सत्येनातिवदानीति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति ॥ ७.१६.१ ॥

॥ इति षोडशः खण्डः ॥

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन्सत्यं वदति विजानन्नेव सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ ७.१७.१ ॥

॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति मतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ ७.१८.१ ॥

॥ इति अष्टादशः खण्डः ॥

यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन्मनुते श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धा त्वेव विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति ॥ ७.१९.१ ॥

॥ इति एकोनविंशतितमः खण्डः ॥

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति नानिस्तिष्ठञ्छ्रद्दधाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति ॥ ७.२०.१ ॥

॥ इति विंशतितमः खण्डः ॥

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति कृतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ ७.२१.१ ॥

॥ इति एकविंशः खण्डः ॥

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवो विजिज्ञास इति ॥ ७.२२.१ ॥

॥ इति द्वाविंशः खण्डः ॥

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ ७.२३.१

॥ इति त्रयोविंशः खण्डः ॥

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यँ स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ॥ ७.२४.१ ॥

गोअश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि ब्रवीमीति होवाचान्योह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति ॥ ७.२४.२ ॥

॥ इति चतुर्विंशः खण्डः ॥

स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदं सर्वमित्यथातोऽहंकारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदं सर्वमिति ॥ ७.२५.१ ॥

अथात आत्मादेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति अथ येऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषां सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति ॥ ७.२५.२ ॥

॥ इति पञ्चविंशः खण्डः ॥

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशात्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावावात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्मतश्चित्तमात्मतः संकल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामात्मतो मन्त्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदंसर्वमिति ॥ ७.२६.१ ॥

तदेष श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखतां सर्वं ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश इति स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विंशतिराहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान्सनत्कुमारस्तं स्कन्द इत्याचक्षते तं स्कन्द इत्याचक्षते ॥ ७.२६.२ ॥

॥ इति षड्विंशः खण्डः ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

LATIN SCRIPT

PRAPATHAKA SEVEN

1. Nārada went [for spiritual instruction] to Sanatkumāra and said, 'Sir, please teach me.' Sanatkumāra said to him: 'First tell me what you know already. I'll teach you from that point.' Nārada said—

2. Sir, I have read the Ṛg Veda, the Yajur Veda, the Sāma Veda, and the fourth—the Atharva Veda; then the fifth—history and the Purāṇas; also, grammar, funeral rites, mathematics, the science of omens, the science of underground resources, logic, moral science, astrology, Vedic knowledge, the science of the elements, archery, astronomy, the science relating to snakes, plus music, dance, and other fine arts. Sir, this is what I know.

3. 'True, I have learnt much, but I know only the word meaning. I do not know the Self. Sir, I have heard from great persons like you that only those who know the Self are able to overcome sorrow. I am suffering from sorrow. Please take me across the ocean of sorrow.' Sanatkumāra then said to Nārada, 'Everything you have learnt so far is just words'.

4. Name is the Ṛg Veda, the Yajur Veda, the Sāma Veda, and the fourth—the Atharva Veda; then the fifth—history and the Purāṇas; also, grammar, funeral rites, mathematics, the science of omens, the science of underground resources, logic, moral science, astrology, Vedic knowledge, the science of the elements, archery, astronomy, the science relating to snakes, plus music, dance, and other fine arts. These are only names. Worship name.

5. 'Anyone who worships name as Brahman can do what he pleases within the limits of the name.' Nārada asked, 'Sir, is there anything higher than name?' 'Of course there is something higher than name,' replied Sanatkumāra. Nārada then said, 'Sir, please explain that to me'.

::

1. Speech is certainly superior to name. Speech makes known the Ṛg Veda, the Yajur Veda, the Sāma Veda, and the fourth—the Atharva Veda; then the fifth—history and the Purāṇas; also, grammar, funeral rites, mathematics, the science of omens, the science of underground resources, logic, moral science, astrology, Vedic knowledge, the science of the elements, archery, astronomy, the science relating to snakes, plus music, dance, and other fine arts; also heaven and earth; air, space, water, and fire; the gods and human beings; cattle and birds; creepers and big trees; animals of prey as well as worms, fleas, and ants; merit and demerit; truth and untruth; good and evil; and the pleasant and the unpleasant. If speech did not exist there would be no awareness of merit and demerit, nor of truth and untruth, good and evil, the pleasant and the unpleasant. Speech alone makes it possible to understand all this. Worship speech.

2. 'Anyone who worships speech as Brahman can do what he pleases within the limits of speech.' Nārada asked, 'Sir, is there anything higher than speech?' 'Of course there is something higher than speech,' replied Sanatkumāra. Nārada then said, 'Sir, please explain that to me'.

::

1. The mind is superior to speech. Just as a person can hold in his fist two āmalaka fruits, or two kola fruits [plums], or two akṣa fruits, so also the mind can hold within it both speech and name. If a person thinks, 'I will read the mantras,' he reads them. If he thinks, 'I will do this,' he does it. If he decides, 'I will have children and animals,' he can try to have them. If he decides, 'I will conquer this world and the next,' he can try to do it. [This is the characteristic of the mind. If it says it will do something, it can do it.] The mind is the self. The mind is the world. The mind is Brahman. Worship the mind.

2. 'Anyone who worships the mind as Brahman can dp what he pleases within the limits of the mind.' Nārada asked, 'Sir, is there anything higher than the mind?' 'Of course there is something higher than the mind,' replied Sanatkumāra. Nārada then said, 'Sir, please explain that to me'.

::

1. The will is certainly superior to the mind. When a person wills, he starts thinking. Then he directs the organ of speech, and finally he makes the organ of speech utter the name. All the mantras merge in the names and all the actions merge in the mantras.

2. All these things [mind, speech, name, etc.] merge in saṅkalpa, arise from saṅkalpa, and are supported by saṅkalpa. [That is the will decides the direction of everything you do. It is the soul of everything.] Heaven and earth will, and so do air, space, water, and fire. [That is, it is their will that determines their work.] Through their will the rain wills, and through the will of the rain, food wills. The will of food is the will of life. The will of life is the will of the mantras, and the will of the mantras is the will of all activities. The will of the activities is the will of the worlds, and the will of the worlds determines the will of everything. Such is the will. Worship this will.

3. 'One who worships saṅkalpa as Brahman can attain any world he wills. He becomes true and attains the world of truth. He is firmly established and also attains a world which is firmly established. He is free from pain and attains also a world free from pain. One who worships saṅkalpa as Brahman can do what he pleases within the limits of saṅkalpa.' Nārada asked, 'Sir, is there anything higher than saṅkalpa?' 'Of course there is something higher than saṅkalpa,' replied Sanatkumāra. Nārada then said, 'Sir, please explain that to me'.

::

1. Intelligence is certainly superior to will-power. A person first comprehends, and then he wills. Next he thinks it over again and again, and then he directs the organ of speech. Finally he makes the organ of speech utter the name. All the mantras then merge in the names, and all the actions merge in the mantras.

2. All these [will-power, mind, etc.] merge in intelligence, are directed by intelligence, and are supported by intelligence. That is why, a person may be learned but if he is dull, people [ignore him and] say: 'He does not exist, no matter how much he seems to know. If he were really learned, he would not be so foolish.' On the other hand, if a person is not learned but he is intelligent, people will listen to him [with respect]. It is intelligence that governs all these. It is their soul and their support. Therefore, worship intelligence.

3. 'One who worships intelligence as Brahman attains worlds of intelligence [i.e., things he regards as important]. He becomes true and attains the world of truth. He is firmly established and also attains a world which is firmly established. He is free from pain and also attains a world free from pain. One who worships intelligence as Brahman can do what he pleases within the limits of intelligence.' Nārada asked, 'Sir, is there anything higher than intelligence?' 'Of course there is something higher than intelligence,' replied Sanatkumāra. Nārada then said, 'Sir, please explain that to me'.

::

1. Meditation is certainly superior to intelligence. The earth seems to be meditating. The space between the earth and heaven seems to be meditating. So also, heaven seems to be meditating. Water seems to be meditating. The mountains seem to be meditating. Gods and human beings also seem to be meditating.

2. 'One who worships meditation as Brahman can do what he pleases within the limits of meditation.' Nārada asked, 'Sir, is there anything higher than meditation?' 'Of course there is something higher than meditation,' replied Sanatkumāra. Nārada then said, 'Sir, please explain that to me'.

::

1. Vijñāna [the practical application of knowledge] is certainly superior to meditation. Through vijñāna one knows the Ṛg Veda, the Yajur Veda, the Sāma Veda, and the fourth—the Atharva Veda; then the fifth—history and the Purāṇas; also, grammar, funeral rites, mathematics, the science of omens, the science of underground resources, logic, moral science, astrology, Vedic knowledge, the science of the elements, archery, astronomy, the science relating to snakes, plus music, dance, and other fine arts; also heaven and earth; air, space, water, and fire; the gods and human beings; cattle and birds; creepers and big trees; animals of prey as well as worms, fleas, and ants; merit and demerit; truth and untruth; good and evil; the pleasant and the unpleasant; food and water; and this world and the other world. One knows all this through vijñāna. Worship vijñāna.

2. 'One who worships vijñāna as Brahman attains the vijñānamaya and jñānamaya worlds. One who worships vijñāna as Brahman can do what he pleases within the limits of vijñāna.' Nārada asked, 'Sir, is there anything higher than vijñāna?' 'Of course there is something higher than vijñāna,' replied Sanatkumāra. Nārada then said, 'Sir, please explain that to me'.

∷

1. Strength is certainly superior to understanding. One strong person can make even a hundred people of understanding shake with fear. If a person is strong, he will be enthusiastic and up and about. He will then start serving his teacher, and while serving his teacher he will be close to him. While sitting close to the teacher, he Will watch him and listen to what he says. Then he will think it over and try to understand. He will then act on it, and finally he will grasp the inner meaning. Strength supports the earth. It also supports the interspace, heaven, the mountains, gods and human beings, cattle, birds, creepers, and trees. It supports animals of prey as well as worms, fleas, and ants. It supports the whole world. Worship strength.

2. 'One who worships strength as Brahman can do what he pleases within the limits of strength.' Nārada asked, 'Sir, is there anything higher than strength?' 'Of course there is something higher than strength,'.

∷

1. Food is certainly superior to strength. This is why if a person fasts for ten days and nights, he may survive but he will not be able to see, hear, think, understand, work, or fully grasp the meaning of what he is taught. But if he eats food, he can then see, hear, think, understand, work, and fully grasp the meaning of the teachings. Therefore worship food.

2. 'One who worships food as Brahman attains worlds full of food and drink. One who worships food as Brahman can do what he pleases within the limits of food.' Nārada asked, 'Sir, is there anything higher than food?' 'Of course there is something higher than food,' replied Sanatkumāra. Nārada then said, 'Sir, please explain that to me'.

∷

1. Water is certainly superior to food. That is why if there is no rain, people worry and think, 'There will not be enough food.' But if there is a good rainfall, they are happy, thinking, 'There will be plenty of food.' All these are water in different forms: the earth, the interspace, heaven, the mountains, gods and human beings, cattle and birds, creepers and trees, animals of prey, worms, insects, and ants. All these are water in different forms. Therefore worship water.

2. 'One who worships water as Brahman gets all he desires and is happy. One who worships water as Brahman can do what he pleases within the limits of water.' Nārada asked, 'Sir, is there anything higher than water?' 'Of course there is something higher than water,' replied Sanatkumāra. Nārada then said, 'Sir, please explain that to me'.

∷

1. Fire [or, heat] is certainly better than water. That fire, taking air as its support, heats the sky. Then people say: 'It is very hot. The body is burning. It will rain soon.' Fire first produces these signs, and then creates the rain. This is why there is lightning going straight up or going sideways in a zigzag manner, and along with it thunder. This is why people say: 'There is lightning and thunder. It will rain soon'.

2. 'One who worships fire as Brahman becomes bright himself, and he attains worlds that are bright, shining, and without a hint of darkness. One who worships fire as Brahman can do what he pleases within the range of fire.' Nārada asked, 'Sir, is

there anything higher than tejas?' 'Of course there is something higher than tejas,' replied Sanatkumāra. Nārada then said, 'Sir, please explain that to me'.

∷

1. Ākāśa [space] is certainly superior to fire. The sun and the moon are both within ākāśa, and so are lightning, the stars, and fire. Through ākāśa one person is able to speak to another. Through ākāśa one is able to hear. And through ākāśa one is able to hear what others are saying. In ākāśa one enjoys, and in ākāśa one suffers. A person is born in ākāśa, and plants and trees grow pointing to ākāśa. Worship ākāśa.

2. 'One who worships ākāśa [space] as Brahman attains worlds that are spacious, shining, free from all drawbacks, and extensive. One who worships ākāśa as Brahman can do what he pleases within the range of ākāśa.' Nārada asked, 'Sir, is there anything higher than ākāśa?' 'Of course there is something higher than ākāśa,' replied Sanatkumāra. Nārada then said, 'Sir, please explain that to me'.

∷

1. Memory is certainly superior to ākāśa [space]. This is why, if many people get together but their memory fails, then they cannot hear or think or know anything. But if they remember, they can then hear, think, and know. Through memory one knows one's children and animals. Therefore, worship memory.

2. 'One who worships memory as Brahman has free movement as far as memory goes.' Nārada asked, 'Sir, is there anything higher than memory?' 'Of course there is something higher than memory,' replied Sanatkumāra. Nārada then said, 'Sir, please explain that to me'.

∷

1. Hope is certainly better than memory. Hope inspires a person's memory, and one uses one's memory to learn the mantras and perform rituals. One then wishes for children and animals, and one also wishes to attain this world and the next. Therefore, worship hope.

2. 'One who worships hope as Brahman has all his desires fulfilled. He gets whatever he wants without fail. One who worships hope as Brahman has free movement as far as hope goes.' Nārada asked, 'Sir, is there anything higher than hope?' 'Of course there is something higher than hope,' replied Sanatkumāra. Nārada then said, 'Sir, please explain that to me'.

∷

1. Prāṇa [the vital force] is certainly superior to hope. Just as spokes on a wheel are attached to the hub, similarly everything rests on prāṇa. Prāṇa works through its own power [i.e., prāṇa is the means as well as the end]. Prāṇa gives prāṇa to prāṇa, and prāṇa directs prāṇa to prāṇa. Prāṇa is the father, prāṇa is the mother, prāṇa is the brother, prāṇa is the sister, prāṇa is the teacher, and prāṇa is the brāhmin.

2. If a person speaks rudely to his father, mother, brother, sister, teacher, or to a brāhmin, people say to him: 'Shame on you! You have murdered your father. You have murdered your mother. You have murdered your brother. You have murdered your sister. You have murdered your teacher. You have murdered a brāhmin'.

3. But when they have died, if a person piles their bodies on a funeral pyre and bums them, piercing them with a spear [so that the body burns more quickly], no one will say to him, 'You have killed your father,' or 'You have killed your mother,' or 'You have killed your brother,' or 'You have killed your sister,' or 'You have killed your teacher,' or 'You have killed a brāhmin'.

4. It is prāṇa that is all this. He who sees thus, thinks thus, and knows thus becomes a superior speaker. If anyone says to him, 'You are a superior speaker,' he may say, 'Yes, I am a superior speaker.' He need not deny it.

::

1. ‘But a person must first know the Truth. Then he is truly an ativādī.’ Nārada said, ‘Sir, I want to be an ativādī by knowing the Truth.’ Sanatkumāra replied, ‘But one must earnestly desire to know the Truth.’ ‘Sir, I earnestly desire to know the Truth,’ Nārada said.

::

1. Sanatkumāra said: ‘When a person knows for certain, then he can truly speak of the Truth. But without knowing well, he cannot speak of the Truth. One who knows for certain speaks of Truth. But one must seek knowledge in depth.’ Nārada said, ‘Sir, I seek knowledge in depth’.

::

1. Sanatkumāra said: ‘When a person learns to think well, then he can know deeply. Without thinking well, one cannot know deeply. One knows for certain when one thinks deeply. But one must want to know how to think well.’ Nārada replied, ‘Sir, I want to know how to think well’.

::

1. Sanatkumāra said: ‘When a person has respect [for what he hears], then he gives due thought to it. Without this respect he attaches ho importance to what he hears. One thinks deeply over something that one respects. But one must try to attain this respect.’ Nārada replied, ‘Sir, I want to have this respect’.

::

1. Sanatkumāra: ‘When a person is steady and devoted to his teacher, then he has respect. Without being steady, one cannot have respect. One has steadiness when one has genuine respect and devotion. But one must seek this steadiness with great earnestness.’ Nārada replied, ‘I seek this steadiness’.

::

1. Sanatkumāra said: ‘When a person keeps doing his duty, he becomes steady. If one does not do one’s duty, one cannot have steadiness. One attains steadiness by doing one’s duty. But one should try to know what duty means.’ Nārada replied, ‘Sir, I want to know about duty’.

::

1. Sanatkumāra said: ‘A person works when he gets happiness. He does not care to work if he does not get happiness. By getting happiness one does one’s duty. But one must try to understand the true nature of this happiness.’ Nārada replied, ‘Sir, I want to know well the true nature of happiness’.

::

1. Sanatkumāra said: ‘That which is infinite is the source of happiness. There is no happiness in the finite. Happiness is only in the infinite. But one must try to understand what the infinite is.’ Nārada replied, ‘Sir, I want to clearly understand the infinite’.

::

1. Sanatkumāra said: ‘Bhūmā [the infinite] is that in which one sees nothing else, hears nothing else, and knows [i.e., finds] nothing else. But alpa [the finite] is that in which one sees something else, hears something else, and knows something else. That which is infinite is immortal, and that which is finite is mortal.’ Nārada asked, ‘Sir, what does bhūmā rest on?’ Sanatkumāra replied, ‘It rests on its own power—or not even on that power [i.e., it depends on nothing else]’.

2. In this world it is said that cattle, horses, elephants, gold, servants, wives, farmlands, and houses are a person’s glory. I do not mean this type of glory, for these things are not independent of each other. This is what I am talking about—

∷

1. That bhūmā is below; it is above; it is behind; it is in front; it is to the right; it is to the left. All this is bhūmā. Now, as regards one’s own identity: I am below; I am above; I am behind; I am in front; I am to the right; I am to the left. I am all this.

2. Next is the instruction on the Self: The Self is below; the Self is above; the Self is behind; the Self is in front; the Self is to the right; the Self is to the left. The Self is all this. He who sees in this way, thinks in this way, and knows in this way, has love for the Self, sports with the Self, enjoys the company of the Self, and has joy in the Self, he is supreme and can go about as he likes in all the worlds. But those who think otherwise are under the control of others. They cannot remain in the worlds they live in, nor can they move about in the worlds as they like [i.e., they are under many limitations].

∷

1. For a person like this who sees in this way, thinks in this way, and has this knowledge, everything comes from the Self: Life, hope, memory, space, fire, water, birth and death, food, strength, knowledge in depth, meditation, the heart, resolution, the mind, speech, name, mantras, and all work—all this comes from the Self.

2. Here is a verse on the subject: ‘He who has realized the Self does not see death. For him there is no disease or sorrow. Such a seer sees everything [as it is] and also attains everything in whatever way [he wants].’ He is one [i.e., before creation; but after creation], he is in three forms, five forms, seven forms, and nine forms. Then again, he is in eleven, a hundred and ten, and even a thousand and twenty forms. If one eats pure food, one’s mind becomes pure. If the mind is pure, one’s memory becomes strong and steady. If the memory is good, one becomes free from all bondages. The revered Sanatkumāra freed Nārada from all his shortcomings and led him beyond darkness [i.e., ignorance]. The wise say that Sanatkumāra is a man of perfect knowledge.

∷ ∷ ∷